
मानव अधिकार : संप्रत्ययात्मक विश्लेषण

घनश्याम गुप्त*

*विभागाध्यक्ष, बी.एड. विभाग, रजत गर्ल्स डिग्री कालेज, पंचवटी कमता, लखनऊ

Contact : ghanshyamgupta13@gmail.com

सारांश

मानव अधिकार की चर्चाओं के अन्तर्गत केन्द्रीय विसंगति यह प्रतीत होती है कि प्रायः यह चर्चा प्रत्ययों के मौलिक स्वभाव के अन्तर्गत नहीं होती और प्रायः वही प्रयोगात्मक चर्चाएँ सामने आती हैं जिसमें प्रक्रियाओं, उनके अनुपालन, संस्थागत मर्यादाओं, संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों के आचरण का दोहरापन अथवा मानव अधिकारों की शिक्षा कैसे दी जाये इसके सम्बन्ध में बिना विश्लेषण के कुछ कपोल कल्पित निर्देश ही सामने आते हैं। इस लघु लेख में मेरा प्रयास इस ओर ध्यान आकर्षण कराना है कि जब तक हम अधिकार, कर्तव्य, मानव आदि मौलिक प्रत्ययों की दार्शनिक व्याकरण की व्याख्या नहीं करेंगे और प्रत्ययात्मक रूप से उनके सम्बन्धों का मानचित्रण नहीं करेंगे तब तक अनुप्रयोगात्मक विषयों पर भी हमें अच्छे निर्देशन की प्राप्ति नहीं हो पायेगी।

मुख्य शब्दावली: अधिकार, कर्तव्य, अस्तित्व, वैधानिक

प्रस्तावना

मानव अधिकार के प्रत्ययों पर 'The Concept of Human Right' के शीर्षक से जैक डोनली ने अच्छा प्रयास किया है जिसमें **Right** शब्द के दो प्रयोगों को विभेदित किया गया है : **Being Right** या उचित होना तथा **Having Right** या अधिकार प्राप्त होना। ये दो अलग-अलग प्रयोग हैं। पहला 'नैतिक औचित्य' को रेखांकित करता है और दूसरा 'अधिकार की प्राप्ति' की बात करता है। ये दो अलग-अलग प्रयोग हैं। जब हम 'क्या उचित है?' की चर्चा करते हैं, तो हम एक विशेष अवसर पर व्यक्ति विशेष के लिए क्या उचित है : इसकी भी चर्चा करते हैं।

d- क्या मित्र की सहायता करना तब भी उचित है जब वह सही नहीं है?"

ख. क्या दुश्मन की सहायता तब भी नहीं करनी चाहिए जब वह सही है?"

यहाँ पर सही एवं उचित का क्या विशेष नैतिक अर्थ है?

दूसरा **Right** का अर्थ है जहाँ हम **Holding a Right** अर्थात् 'अधिकारों के होने' की बात करते हैं। यह एक भिन्न अर्थ है जहाँ अधिकार एक प्रकार की वस्तुएँ हैं जिन्हें लोग प्राप्त करते हैं या उसका प्रयोग करते हैं। सही या उचित होना प्रायः एक विशेषण/क्रिया विशेषण के रूप में प्रयोग होते हैं। अधिकार एक संज्ञा है जो किसी व्यक्ति के पास होती है। यह रूचिकर है कि दोनों ही प्रयोग मूल्यात्मक हैं जिसमें एक प्रकार से कर्तव्य निर्माण होता है।

कई स्थितियों में 'यदि कुछ उचित है तो वह करणीय भी है' ऐसा प्रयोग भी देखने को मिलता है।

'A के लिए B के सन्दर्भ में X करना उचित है' ऐसा कहने में कई बार यह भाव होता है कि X करना उचित है भले ही वह A के लिए किया जाए, B के लिए किया जाए...C के लिए किया जाए परन्तु यह आकस्मिक है। परन्तु यदि A के पास ठ से सम्बन्धित अधिकार है तो यह अधिकार X कार्य के आन्तरिक स्वभाव पर आधारित नहीं होगा। 1977 में त्वदंसक क्वतापद ने अपनी पुस्तक '**Taking Right Seriously**' में अधिकारों को एक ट्रम्प के रूप में प्रस्तुत किया। यह एक प्रकार की युक्तिसंगत तंत्र/व्यवस्था के अन्तर्गत इस प्रकार विद्यमान होते हैं कि उनका महत्व कई अन्य उपयोगितावादी गणनाओं एवं अभिरुचियों से अधिक होता है। अधिकारों पर हम दावा कर सकते हैं। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि अधिकार पद एक क्रियावाचक शब्द है जिसे परफारमेटिव कहा जाता है जिसमें यह अपेक्षा सन्निहित है कि कोई क्रिया सम्पादित हो जो एक नियमित सामाजिक प्रक्रिया को प्रारम्भ करती है जिसके माध्यम से कर्तव्यधारी अधिकार धारक को अधिकारोपलब्धि कराता है।

अधिकार एवं कर्तव्य

हम कई बार सुनते हैं कि अधिकार और कर्तव्य एक दूसरे के बिना नहीं हो सकते। कई लोग यह भी मानते हैं कि 'वही व्यक्ति अधिकार माँग सकता है जो कर्तव्य करने के लिए तत्पर हो' परन्तु यह लोकप्रिय विचार अत्यन्त भ्रामक है। अधिकार कर्तव्य के बिना नहीं हो सकते हैं परन्तु यहाँ 'नहीं होने' का क्या तात्पर्य है? यह स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है। नवजात शिशु, विक्षिप्त, शारीरिक रूप से असमर्थ, अजन्में शिशु और पशुओं के सन्दर्भ में भी हम प्रायः मानते हैं इन सब को कम से कम जीवन का अधिकार तो है ही। परन्तु इनमें से कोई भी कर्तव्य करने का सामर्थ्य ही नहीं रखता। कई स्थितियों में ज्ञानाभाव में, कई स्थितियों में कर्म अक्षमता के कारण। परन्तु वे अधिकार रखते हैं। अधिकारों के सन्दर्भ में यदि मेरा अधिकार है तो किसी एक व्यक्ति का या संस्था का यह कर्तव्य होगा कि वह मेरे अधिकार को सुरक्षित रखे, संवर्धित करे एवं सम्मान करे। इस प्रकार से अधिकार धारक बिना कर्तव्य धारकों के अपने अधिकारों को व्यर्थ पायेगा, परन्तु इसका आशय यह नहीं है कि वह स्वयं अधिकार धारक नहीं है। यह भी रूचिकर है कि मानव अधिकार के सन्दर्भ में इसकी आलोचना करने वाले राजनीति के दोनो ध्रुवों पर पाए जाते हैं। एक

ओर दक्षिणपंथी यह मानते हैं कि मानव अधिकार सम्बन्धी अवधारणा संस्कृति, परम्परा, ईश्वरवाद आदि को चुनौती देती है वहीं दूसरी ओर एक विशेष प्रकार का वामपंथी विचार जो राज्य को ही एक शोषक संस्था मानता है इस कारण राज्य से मांगे गए मानव अधिकारों को भी सही नहीं मानता है। इस विचार पर हम आगे कुछ चर्चा करेंगे।

Right शब्द के जिन दो प्रयोगों का हमने आरम्भ में उल्लेख किया था वे परस्पर सम्बन्धित हैं परन्तु यह सम्बन्ध अनिवार्य नहीं है। कुछ संविदात्मक अधिकार नैतिक रूप से तटस्थ कहे जा सकते हैं और कहीं पर समाज कल्याण के कार्यक्रमों को हम अधिकारों के रूप में माँग सकते हैं। 'नियमानुसरण' सदैव उचित हो, यह भी आवश्यक नहीं है। अन्यायपूर्ण कानून को स्वीकार करना अनुचित हो सकता है। केवल इस कारण कि 'X सही है यह लागू नहीं होता कि X हमारा अधिकार है। करुणा, दया के कार्य जैसे –

- क. भूखों को खाना देना उचित है, गरीबों को वस्तु देना उचित हो सकता है परन्तु क्या यह भूखों और दरिद्रों का अधिकार है?
- ख. कई बार यह उदाहरण दिया जाता है कि यदि पार्क में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को मार रहा है तब द्रष्टा का क्या कर्तव्य है? निश्चय ही सहायता करना श्लाघनीय है परन्तु क्या यह अधिकार पूर्वक मांगा जा सकता है या नहीं। अर्थात् क्या यह उसका "सहायता प्राप्त करना" अधिकार है या नहीं? हिंसा करने वाले और तटस्थ द्रष्टा को हम क्या एक ही प्रकार के नैतिक भाव से देखेंगे या कि नहीं।

Jermy Bentham ने अधिकारों को लाभकारी कर्तव्यों के रूप में अभिहित किया था। ये वास्तव में व्यक्तियों को दिए गए आश्वासन हैं। सभी औचित्य, अधिकार के दावे उत्पन्न नहीं करते। इसे निम्न उदाहरणों से समझा जा सकता है—

- क. यदि एक व्यक्ति कहीं डूब रहा है ओर दूसरा व्यक्ति उस पथ से जा रहा है, उसे तैरना भी आता है, किसी अन्य के जीवन रक्षा का अत्याधिक संकट नहीं है तो कूद कर डूबते की सहायता करना उचित भी होगा, प्रशंसनीय भी; पर यह डूबने वाले का अधिकार नहीं है।
- ख. पड़ोसी के घर के आसपास किसी संदिग्ध व्यक्ति को घूमते हुए देखकर उसकी सूचना देना उचित भी होगा और प्रशंसनीय भी। परन्तु यह भी उसका अधिकार नहीं है।
- ग. किसी व्यक्ति का यदि कोई दुर्लभ रक्त समूह है किसी अन्य व्यक्ति को उस रक्त समूह की आवश्यकता है ऐसे में यदि आप उसे रक्तदान करते हैं तो यह भी उचित एवं प्रशंसनीय कृत्य है परन्तु रक्त ग्रहण करने वाले का अधिकार नहीं।

अधिकार कर्तव्यधारक और दावेदार के बीच का एक सम्बन्ध है। अधिकार एक प्रकार का नियमानुशासित सम्बन्ध क्षेत्र उत्पन्न करते हैं। वह एक सामाजिक प्रक्रिया है वस्तु नहीं है। अधिकार प्रयोग में तभी आते हैं जब कर्तव्यधारक उसका सम्मान करता है और तभी उनसे व्यक्ति लाभान्वित होता है। यह स्पष्ट है कि अधिकारों का होना, तथा उनका प्रभावी लाभ प्राप्त करना हमेशा साथ-साथ नहीं होता है। स्त्रियों अश्वेतों, दलितों के समानता के अधिकार तथा अलोकतांत्रिक राज्यों के अन्तर्गत बोलने की आजादी के अधिकार प्रदत्त तो हैं परन्तु वे उनका उपयोग नहीं हो रहा है।

अधिकार के मूल्यात्मक स्वरूप एवं वरीयताक्रम

हम अक्सर अधिकारों के वैधानिक अस्तित्व एवं तथ्यात्मक लाभ में भेद करते हैं। अक्सर हम पाते हैं कि अधिकारों में भी एक वरीयताक्रम होता है जैसे यदि हम सादे वादों को ही ले तो वे भी अधिकार उत्पन्न करते हैं। जैसे आपने मिलने का वादा किया पर आप आए नहीं। दूसरे सोपान पर संविदाओं को रखा जा सकता है जैसे गाड़ी के टकराने पर आप लिखित रूप से प्रतिबद्ध हैं कि आपको हानि की भरपाई करनी पड़ेगी। तीसरे सोपान पर होंगे हमारे संवैधानिक अधिकार जो हमें राज्य के द्वारा उपलब्ध हैं एवं जिनके निर्माण की प्रक्रिया भी विधि सम्मत है। इनसे भी ऊपर के सोपान पर हैं मानव अधिकार, जिनका दावा हम तब करते हैं जब

उससे निम्नतर दावों से काम नहीं चलता। मानव अधिकार के दावे सर्वोच्च दावे हैं और अन्तिम भी। निम्नतर दावे अधिक सुविधा से प्रभावी हो सकते हैं और उन्हीं का सर्वप्रथम दावा किया जाता है। जितना ऊँचा दावा, उतना ही कठिन है उसे प्रभावी बनाना। परन्तु जितना ऊँचा दावा होगा उसको प्रभावी बनाने से उतना ही व्यापक परिवर्तन एवं प्रभाव होगा। यदि मानव अधिकार का वास्तविक अनुपालन होगा तो इसके दावे करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहेगी। एक श्रेष्ठ नगर समाज जिसमें मानव अधिकारों की एक श्रेष्ठ व्यवस्था है आधारभूत नियामकता प्रदान करती है। मानव अधिकारों की सक्रियता व्यतिक्रम को रोकने के लिए तो होगी परन्तु उसकी कोई राजनैतिक भूमिका नहीं होगी। अनेक विद्वानों ने यह माना है कि मानव अधिकार केवल घोषणापरक मानव अधिकार हैं। परन्तु ऐसा कहने में ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक अत्यधिक सीमित, वैधानिक एवं भाववादी विचारधारा है। यदि मानव अधिकार वास्तविकता में लोगों को उपलब्ध नहीं है तो वह व्यर्थ है यह कथन एक हताश आन्दोलनकारी की आह तो हो सकता है परन्तु यह विश्लेषण की दृष्टि से सम्यक नहीं है। मानव अधिकार के स्रोत क्या हैं? इस पर जान लॉक ने यह माना था कि मानव अधिकार ईश्वर प्रदत्त हैं। वे इन्हें प्राकृतिक अधिकार मानते हैं। फ्रांसीसी घोषणा यह दावा करती है कि 'सभी मनुष्य स्वतंत्र हैं और बराबर भी'। अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार के मानक घोषणापत्र मनुष्य की आद्य गरिमा की चर्चा करते हैं। परन्तु क्या है मानव अधिकारों के स्रोत? कई दार्शनिक मानव अधिकारों को आवश्यकताओं पर आधारित मानते हैं। इस सिद्धान्त को वे वैधानिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक संदर्भों में प्रस्तुत करते हैं। अब्राहम मैसलो मानते थे कि हम मूल प्रवृत्त्यात्मक आधारभूत आवश्यकताओं के रूप में चर्चा कर सकते हैं या अधिकारों के रूप में या आवश्यकताओं के रूप में। यहाँ पर कुछ दार्शनिक प्रश्न हमें चिन्तित कर सकते हैं। 'X मनुष्यों के लिए अच्छा है इस कारण X मानव अधिकार है' इस कथन में एक प्रकार का तार्किक दुराव है। यह भी एक गहन प्रश्न है कि मानव स्वभाव का कौन सा चित्र मानव अधिकार और मानव आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त है। बुनियादी आवश्यकताएँ जो जीवन के लिए महत्वपूर्ण हैं वे अति न्यून प्रतीत होती हैं तथा गुणात्मकता के संदर्भ को प्रभावित नहीं करती। मैसलो आवश्यकताओं की वरीयता क्रम एवं प्राथमिकता की चर्चा करते हैं। उत्तरजीविता, सुरक्षा, प्रेम, स्नेह, तदीयत्व, आत्मसम्मान, और आत्मपूर्णता/उपलब्धि की वह चर्चा करते हैं। मैसलो अधिक आवश्यकताओं की भी चर्चा करते हैं जैसे सत्य, सौन्दर्य, पूर्णता, समृद्धि, पर्याप्तता, क्रीडात्मकता, निस्प्रयासता और एकाकीपन ये सभी आवश्यकताएँ बराबर हैं और इनकी पूर्ति होनी चाहिए। मैसलो के विचार अत्याधिक व्यापक रूप से शिक्षा, शिक्षामनोविज्ञान, प्रबंधन प्रशिक्षण आदि क्षेत्रों में प्रयोग किए जाते हैं और इनके महत्व को किसी भी प्रकार से कम नहीं माना जा सकता है। परन्तु यहाँ पर कुछ प्रश्न रखे जा सकते हैं। शोधकर्ता यह दिखाते हैं कि प्रयोगों और आनुभविक शोधों से मैसलो का वरीयताक्रम वैध नहीं प्रमाणित किया जा सकता है। क्या सभी मनुष्य इसी वरीयता क्रम में आवश्यकताओं को रखते हैं? यदि इसे सांख्यिकी प्रश्न के रूप में लिया जाय तो इसका उत्तर निषेधात्मक होगा। मैसलो ने स्वयं भी यह स्वीकार किया था कि ज्ञान एवं साक्षात्कार का पिपासु अपनी बहुत सी शारीरिक एवं भावनात्मक आवश्यकताओं को त्यागकर अपने लक्ष्यभेद के लिए उद्धत, प्रयासरत एवं उत्साहित हो सकता है।

ऐसे संदर्भ में मैसलो के सिद्धान्तों को एक आनुभविक सामान्यीकरण पर आधारित न मानकर इसे एक दार्शनिक नृशास्त्रीय सिद्धान्त मानना ही उचित होगा। इसका अभिप्राय यह है कि मानव की जिस धारणा को यहाँ पर आधार माना गया है वह वास्तव में विवरणात्मक न होकर मूल्यात्मक है। आवश्यकताओं की वरीयता और प्राथमिकता के सिद्धान्त को मानव अधिकार का सिद्धान्त बनाने में कई और कठिनाईयाँ भी सामने आती हैं। जैसे मानव अधिकारों का गैरवरीयतापरक होना दूसरा मानव अधिकारों की सार्वभौमिकता इसके साथ सुसंगत नहीं होगी। जेक डोनली ने इसी कारण मानव अधिकारों के प्रकृति प्रदत्त होने अथवा संविदा से प्राप्त होने वाले सिद्धान्तों को अपनी आलोचना का विषय बनाया और मानव अधिकारों के स्रोत के सम्बन्ध में एक निर्माणात्मक चित्र प्रस्तुत किया। मानव अधिकार मानव गरिमा के लिए आवश्यक हैं एवं उनका निषेध मानवता का निषेध है। मानव अधिकार मनुष्य को न तो ईश्वर ने दिए हैं, न प्रकृति ने एवं न ही भौतिक तथ्यों ने। अन्य सामाजिक अभ्यासों की भांति ही मानव अधिकार मानवीय क्रियाओं से ही उत्पन्न होते हैं। मानव अधिकार, मानव सम्भावना और उनको वास्तविकता में परिणति करने के एक जीवन दृष्टि का प्रतिमान स्थापित करते हैं।

मानव के साथ मानव जैसा व्यवहार कीजिए तो आपको मानव उपलब्ध होगा

मानव अधिकार इस प्रकार से एक आत्मसिद्धि करने वाली भविष्यवाणी के रूप में समझे जा सकते हैं। मनुष्यों के साथ मनुष्य की तरह व्यवहार करें तो आपको अधिक आत्म उपलब्ध व्यक्ति प्राप्त होंगे। मानव स्वभाव वास्तव में एक भविष्योन्मुखी, उद्देश्यपूर्ण परियोजना है जो सामाजिक प्रक्रियाओं को एक संरचना प्रदान करती है और सम्भावनाओं को विकास का एक परास प्रदान करती है। मानव स्वभाव और मानव अधिकार का सम्बन्ध एक राजनैतिक समाज में द्वन्द्वात्मक है। जैक डोनली ने यह माना था कि मानव अधिकार मनुष्य के नैतिक स्वभाव पर आधारित हैं। अनुभवगम्य भौतिक विवरणों पर नहीं। किस प्रकार का मानव स्वभाव मानव अधिकारों को पोषित करता है? यहाँ पर यह विस्मृत नहीं किया जा सकता कि मानव स्वभाव के सम्बन्ध में अलग-अलग दार्शनिकों ने अलग-अलग विवरण दिए हैं। जहाँ एक ओर थामस हाब्स मनुष्य जीवन को छोटा जानवर के समान प्रतिहिसंक प्रवृत्तियों और लालच से भरा मानते हैं वहीं दूसरी ओर रूसो मनुष्य की स्वाभाविक निर्मलता की चर्चा करते हैं। बर्क के अनुसार सरकार का उद्देश्य है कि वह मानवीय वासनाओं का दमन करे। उसका उद्देश्य मानवीय क्षमता को संवर्धित करना नहीं है। बर्कले और लॉक दोनों ने ही ये माना कि हमें मानव स्वभाव का कुछ विशेष तत्वों का चुनाव करके विकसित करना चाहिए। यह विचार निर्माणात्मक सिद्धान्त के अनुरूप है जहाँ पर मनुष्य का नैतिक स्वभाव एक ऐतिहासिक उत्पाद के रूप में प्रस्तुत किया गया है। एक स्वाभाविक प्रदत्त के रूप में नहीं। प्रख्यात नारीवादी मेरी वालस्टोन क्राफ्ट भी यह मानती हैं कि शिक्षा और चरित्र निर्माण के वातावरण से मानवीयता के स्वाभाविक प्रेम परिवर्तित हो जाते हैं। वह कहती हैं राजनैतिक पुनरुद्धार की प्रेरणा से सकारात्मक राजनैतिक स्वभाव उत्पन्न होगा। कार्ल मार्क्स ने भी इतिहास पर मानव स्वभाव के अर्थपूर्ण नियंत्रण की चर्चा की थी। निर्माणात्मक सिद्धान्त राजनैतिक प्रगति तथा नैतिक विकास के सम्बन्ध में यह मानता है कि समन्वित मानवीय प्रक्रिया जो मानव अधिकारों के द्वारा निर्दिष्ट है इसमें सहायक होगी।

मानव स्वभाव निर्धारित है परन्तु पूरी तरह निर्दिष्ट नहीं, यह विचार ऐतिहासिकता को स्वीकार करता है परन्तु पूर्ण निर्दिष्ट नियतिवाद को नहीं। सांस्कृतिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक शक्तियाँ वास्तविकता को आधार प्रदान करती हैं इसी स्वीकारोक्ति के साथ ही मानवीय चेतना एवं कर्तव्य को स्वीकार किया गया है। मानव अधिकारों की परिभाषा में कई बार यह कहा गया कि ये वो अधिकार हैं जो मनुष्य को मनुष्य होने के कारण प्राप्त हैं। यह मनुष्य होना एक नैतिक अवधारणा है। रुचिकर यह है कि स्रोतों के सम्बन्ध में कई बार यह भी कहा गया है कि मानव अधिकार वह अधिकार है जो मनुष्य को अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की स्वीकृति से प्राप्त है। वे अधिकार और स्वतंत्रताएँ जो निर्बन्धिता, स्वायत्तता, शारीरिक संप्रभुता, उत्तरजीविता और मानवीय क्षमता के पूर्ण विकास के लिए अनिवार्य हैं; ऐसे अनेक अधिकार अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेजों में सुरक्षित हैं। कई दार्शनिक प्रश्न मानव अधिकारों के स्रोतों से सम्बन्धित हैं। 'क्या तथ्यों से मूल्य निगमित किए जा सकते हैं?' फ़ैक्ट वल्यू प्रभेद पर चर्चा करने वाले अधिकांश यह मानते हैं कि 'तथ्य से मूल्य प्राप्त नहीं हो सकता'। मानव अधिकारों का प्रसंग मूल्यात्मक है। मानव स्वभाव का आंकलन इस कारण तो उचित होगा कि वह मानव द्वारा किए गये कार्यों की सम्भव सीमा तो तय करेगा जैसा दार्शनिकों ने माना 'अगर कोई कार्य करणीय है तो वह करना सम्भव होना चाहिए।' परन्तु तथ्य से करणीयता का निगमन नहीं हो सकता। मानव स्वभाव ऐसा है इससे मानव को क्या करना चाहिए यह सीधा निगमन उचित नहीं माना जायेगा। दूसरी ओर यह प्रश्न भी उठते हैं कि क्या परम्परा और धर्म के आधार पर स्वीकृत नैतिकता मानव अधिकार आधारित नैतिकता मानी जा सकती है या नहीं। यह प्रश्न मानववाद और मानवतावाद के विवादों से सम्बन्धित है। यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि परम्परागत समाजों में मानव अधिकारों का कोई स्थान नहीं था।

एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी उठाया जा सकता है कि यदि हम मानव अधिकारों का आधार प्रकृति में ढूँढ़े तो प्राकृतिक नियम हमें कोई अधिकार प्रदान नहीं करते केवल यही बताते हैं कि क्या नियम के अनुरूप है। मानव अधिकारों की अवहेलना तुरन्त ही उपचारात्मक कार्यवाही की अपेक्षा रखती है। खालिद इशाक, एडवर्ड सर्ईद जैसे महत्वपूर्ण विद्वान यह मानते हैं कि इस्लाम में मानवीय गरिमा को संवर्धित करने के जो आदेश दिए गए हैं वे मानव अधिकारों के हिमायती हैं। परन्तु औचित्य के

ये विवरण अनिवार्यतः अधिकारों को लागू नहीं करते। न केवल हमको यह देखना है कि किसको मूल्य दिया गया है बल्कि ये भी देखना है कि उसको मूल्यात्मकता किस प्रकार प्रदान की गई है। कई विद्वान बौद्ध विचारधारा में मानव अधिकारों को सुरक्षित पाते हैं। परन्तु किसी भी धर्म या संघ के आदेश पर आधारित नैतिकता क्या नैतिकता की सामान्य परिभाषा के अनुरूप होगी जहां स्वतन्त्रता, स्वायत्तता और संप्रभुता नैतिक आचरण की पूर्व मान्यता है। पिछले दो तीन दशकों में मानव अधिकार एवं विकास की चर्चाएँ परस्पर एक दूसरे को संपोषित हो रही हैं और यह बोध अधिकाधिक स्वीकृति प्राप्त करता जा रहा है कि विकास बिना मानव अधिकार के सम्भव नहीं और मानव अधिकार विकास के बिना पूर्णतया उपलब्ध नहीं हो सकते। मानवीय गरिमा, रचनात्मकता, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास, मानव उत्तरजीविता, सुरक्षा एवं स्वतन्त्रता के प्रश्न भी केन्द्रीय महत्व के हैं। मानव अधिकार सार्वभौमिक है जो उन्हें नागरिकता एवं संविदा अधिकार से प्रभेदित करते हैं। मानव अधिकार अविभाजित है एवं पदसोपानीकृत नहीं है। वे परस्पर सम्बन्धित एवं अन्योन्याश्रित हैं। राज्यों का यह कर्तव्य है कि वे मानव अधिकारों का सम्मान करें, उनकी सुरक्षा करें एवं उनका संवर्धन करें। राज्य ऐसे कानून पारित करें एवं ऐसी व्यवस्था को बनाएँ जो मानव अधिकारों को फलीभूत करने के लिए आवश्यक हों। राज्यों का यह भी कर्तव्य है कि वे संसाधनों का इस तरह आवंटन करे कि इन अधिकारों की अधिकाधिक उपलब्धि हो सके।

मानव अधिकारों के सम्बन्ध में कई बार यह प्रश्न भी उठता है कि कहीं यह पश्चिमी वर्चस्ववाद का प्रतीक तो नहीं। क्या अधिकारों की चर्चा संस्कृति सापेक्ष नहीं होती? यदि हम संयुक्त राष्ट्र के मानव अधिकार घोषणापत्र का ध्यानपूर्वक अवलोकन करें तो हम पायेंगे यह सभी अधिकार सामाजिक और वैश्विक है। जिनमें किसी भी प्रकार के मूल्य को किसी दूसरे पर आरोपित करने का प्रयास नहीं किया गया। वर्गवाद, जातिवाद, लिंगवाद यह सभी मानव अधिकारों के मूल स्वर के विरोध में है और प्रायः सांस्कृतिक सापेक्षता का तर्क देने वाले इन्हीं व्यवस्थाओं के पोषक होने के कारण मानव अधिकारों की सामान्य अवधारणा को कटघरे में लाने का प्रयास करते हैं।

निष्कर्ष

मानव अधिकारों के प्रत्यय की इस प्रकार की विवेचना हमें केन्द्रीय समस्याओं/ विचारों की ओर ध्यान आकर्षित करती है। इस प्रत्यय के अन्तर्गत ही एक प्रकार का अन्तर्राष्ट्रीयकरण, सार्वभौमीकरण समाहित है साथ ही साथ किन्हीं अर्थों में धर्म निरपेक्षता, धार्मिक औदासिन्य और समभाव का विचार भी इसमें सन्निहित है। महत्वपूर्ण है कि इस विचार में यह भी शामिल है कि हम इस प्रकार के प्रत्यय के अनुरूप समाज को निर्मित करने के लिए साधन एकत्रित करेंगे। यह एक दार्शनिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक प्रतिबद्धता का दिशा निर्देश है। जहाँ एक ओर युद्धों एवं दंगों को हम मानव अधिकारों की अवहेलना के रूप में देखेंगे वही पर दूसरी ओर हम गरीबी को भी मानव अधिकारों के सार्वधिक व्यापक हनन के रूप में देखेंगे। ऐसे में मानव अधिकारों की शिक्षा राजनीति शास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र और अन्य अनेक सामाजिक विषयों को भी देखने की एक सम्पूर्ण नयी आलोचनात्मक पहल की अपेक्षा करेगी। केवल यह कह देना कि हम मानव अधिकारों की शिक्षा में संयुक्त राष्ट्र की उद्घोषणा दस्तावेज और कुछ संधियों की चर्चा कर देंगे यह मानव अधिकार शिक्षा का एक अत्यंत अर्थहीन विचार है। मानव अधिकार शिक्षा इस कारण एक सम्पूर्ण पुनर्मूल्यांकन की अपेक्षा रखती है।

References

- Bentham, J. (1834). Deontology. (John Bowring ed.) Edinberg, Wm Tait.
 - Donnaly, J. (1985). The Concept of Human Right. Croom Helm, London.
 - Dworkin, R. (1977). Taking Right Seriously. Harward University Press, Cambridge.
 - Maslow, A. (1968). Towards a Psychology of Being. D. Van Nostrand Co., Princeton.
 - Wollstoncraft, M. (1791). Vindication of the Rights of Man. J. Johnson, London.
-